आत्मगर्भिता

जीत की बिब्बी जोर- जोर से चीख़े जा रही थी। "अरी! ओ जीतो जल्दी आ, देख सरदार जी को खाँसी लगी है।भीतर से मुलट्ठी-मिसरी ले आ।अरी! पानी का गिलास भी लेती आइयो।नासपिट्टी सारा दिन खेल में लगी रहे है।"

मैं अपने कमरे में बैठी पढ़ रही थी।जीत की बिब्बी की कर्कश पुकार ने मेरा ध्यान भंग कर दिया।अपनी खिड़की से झाँककर मैंने उनके घर की ओर देखा।अपने घर के बाहर कुर्सी पर बैठे अपने पति की पीठ को बिब्बी जोर-जोर से मल रही थी कि जीत सारा सामान ले कर आ पहुँची थी।सरदारजी अपने कोयले के गोदाम से कोयले की धूल-मिट्टी गले में चढ़ाकर लौटे थे, तभी खाँस रहे थे।सरदारजी की अधपकी दाढ़ी व सिर के बाल सफेद देखकर उनके पकी उम्र का अंदाज़ा होता था।वहीं उनकी बीवी के सारे बाल काले- स्याह व रंग भी काला था।उनकी बड़ी बेटी जीत बारह -तेरह साल की व छोटी वंत उससे दो साल छोटी थी।बिब्बी जम्पर और पेटीकोट पहनकर सारा दिन मोहल्ले में बेधड़क घूमती थी।उसके छोटे देवर का दो कमरों का घर था,सुना था वही उन्हें अपने साथ रहने को लाया था।घर के बाहर सीढ़ियों पर बैठकर बिब्बी घर का सारा काम वहीं करती और आने -जाने वालों से बतियाती रहती थी।उधर सारा दिन रौनक ही लगी रहती थी।

मेन सड़क से भीतर की ओर जो गली मुड़ती थी, उसमें एक ओर हमारा घर एक सिरे से आरम्भ होकर चौरस्ते के कुँए तक उसका दूसरा सिरा था।कुएँ के तीनों ओर तीन रास्ते और थे।हमारे घर की बालकनी पूरी गली में थी।सामने खाली मैदान था।मैदान के बाईं ओर पहला घर खड़गसिंग का ,दूसरा जीत का,अगला चाहरदिवारी वाला आहाता,खाली मैदान था।उसके आगे बैंक वाले भैय्या का और आख़िरी घर फुल्ली का था।मैदान के दाहिनी ओर कुँए से दूसरी गली थी।वहाँ सामने राव साहब रहते थे।उनका एक बेटा हैदराबाद में था, यह खाली मैदान उसी की ज़मीन थी।साथ वाले घर में राठीजी और उनके ऊपर दुबेजी की विधवा व जवान बेटा रहते थे।शुक्लाजी के घर ने मैदान का पिछला हिस्सा घेरा हुआ था।कुलमिलाकर मोहल्ले में सभी प्यार मोहब्बत से रहते थे।

खड़गसिंग के घर दो वर्ष बीतते थे कि बच्चा हो जाता था।उन दिनों जीत की बिब्बी उनका खूब ध्यान रखती थी।नहीं तो आपस में दोनों लड़ पड़तीं थीं।शुरू-शुरू में तो मोहल्ले के लोग समझाने या बीच बचाव करने जाते थे,किन्तु धीरे-धीरे सभी ने जाना छोड़ दिया।अब सब को आदत हो गई थी।जीत की बिब्बी कभी खड़गसिंग को दूर के रिश्ते का देवर बताती थी,तो कभी दुश्मन बना लेती थी।उसकी वही जाने ,पर उनकी गाली -गलौज का शोर पढ़ने नहीं देता था।जब गालियों की बौछार शुरू होती ,तो हम लोग अपनी खिड़कियों के पाट कसकर बंद कर देते थे।कहीं उन गालियों की गंदगी हवा में मिलकर हमारे घर में प्रवेश न कर जाए।असमंजस में डूबे ,सब यह सोचते थे कि इन्हें प्यार से रहते -रहते अचानक घर को अखाड़ा बनाने की क्यों सूझती है।जीत के बाबा और खड़गसिंग केशधारी सरदार थे,लेकिन जो छोटा भाई इन्हें यहाँ लाया था और जिसके घर में जीत का परिवार रहता था,वो केशधारी नहीं था।जीत और वन्त कौर उसे प्रेम चाचा कहकर बुलाती थीं।मोहल्ले के सारे बच्चों का भी वो प्रेम चाचा था।वो किसी से भी बात नहीं करता था।सुबह आठ बजे वो अपनी साईकिल चलाकर गन-फैक्टरी में काम करने करीब दस मील दूर जाता था।साँझ ढले शराब का पौव्वा लेकर घर लौटता था।जीत बच्चों को शान से बताती थी ," मेरे बाबा और चाचा रात को इकट्ठे बैठकर शराब पीते हैं,फिर बिब्बी की दो -चार गालियाँ और डाँट सुनकर ही सोते हैं"।यही दिनचर्या थी

उसकी। हाँ,इतवार के दिन वो अपनी साईकिल को धोता और दुल्हन की तरह चमकाता था। वो भी घर के बाहर सीढ़ियों के पास अपनी मैदान से सटी गली में।

हमारा बचपन इसी मैदान से जुड़ा है ।इस मैदान में मोहल्ले के सारे बच्चे खेलते थे। बैड-मिन्टन,फुटबाल,छुआ-छुअल्ली,पिट्ठू,सटापू,रस्सी-कूदना से लेकर नदी-पहाड़ और आँख-मिचौली तक। हमने एक बार गुडड्ा-गुड़िया का ब्याह भी यहीं रचाया था। मेरा गुडड्ा और फुल्ली की गुड़िया। उसने ईंटों के चूल्हे में आग जलाकर भात और आलू -बैंगन की रसेदार भाजी बनाकर बारात का स्वागत किया था। सारे मोहल्ले को न्यौता भेजा गया था। सब बड़ों ने बच्चों का मन रखने को खाया भी और उस जमाने में अठन्नी -रूपया शगुन भी दिया ।सारा हिसाब फुल्ली के भाई लल्लू के पास था। अगले सात दिनों तक खूब मौज -मस्ती की थी सब बच्चों ने मिलकर। बैठक लगती थी कुएँ की जगत पर। सिंधी की दूकान से टॉफियाँ लाकर सब में बराबर

बाँटी जाती थीं। बेईमान लल्लू! कुछ पहले से अपनी जेब में छिपा लेता था,बाद में सब को चिढ़ा-चिढ़ाकर खाता था। जिससे फुल्ली को बहुत शर्मिन्दगी लगती थी। फुल्ली मेरी पक्की सहेली थी। छुटटी के दिन कभी-कभार मैं जानबूझकर खाने के समय उनके घर जाती तो उसकी अम्मा मुझे भी थाली में खाना परोस देती थी । वहीं नीचे ज़मीन पर बैठकर मैं भी हाथ से खाने बैठ जाती, तो वे एहसान मानकर कहतीं,"अरे-रे बिटिया!हम ग़रीबन के घर मींज लेती हो! कित्ता नीका लागे है।"उस थाली को याद करके,आज भी मेरे मुँह का स्वाद बढ़िया हो जाता है ।

फुल्ली की बड़ी बहन थी सीला दिदिया-जो चार पास करके घर बैठी थी। फुल्ली सुबह दस बजे की गई पुत्री-पाठशाला से शाम पाँच बजे लौटती थी। मैं अंग्रजी-स्कूल से तीन बजे आकर जल्दी होम-वर्क निपटाकर उसकी बाट जोहती थी। फुल्ली के आने पर फिर स्टापू और पिट्ठू खेला जाता था। सीला दिदिया मुझे जब भी बुलाती,मैं बिदक जाती क्या भाग ही जाती थी। वो मुझे फूटी आँख नहीं भाती थी। न होता तो शुतुरमुग की तरह अपनी आँखें मींच लेती थी मैं। मेरे चेहरे पर घृणा के भाव आए बिना नहीं रहते थे,जिसका कारण मैं किसी को बता नहीं पाती थी।

सन् **1955** के आसपास की बात है। जिस घर मे अब जीत की बिब्बी शोर मचा रही थी, उस घर में एक जवान जोड़ी रहने को आई थी। मर्द गोरा चिट्टा ग़बरू जवान था,उसकी घरवाली प्रकाशो बेहद ही सुन्दर,सुलझी हुई किसी ऊँचे घराने से संबंधित जान पड़ती थी। वो यदाकदा ही घर से बाहर निकलती थी। अपने घर की खिड़की से वो जब भी बाहर झाँकती ,किसी की भी नज़र अपने तक पहुँचने से पहले ही वो खिड़की की ओट में गुम हो जाती थी। मोहल्ले के सभी बड़े-बूढ़े व बच्चे उसकी एक झलक पाने को ललायित रहते थे। तब मैं चौथी कक्षा में पढ़ती थी। अपने घर की बाल्कनी से मेरी दृष्टि भी बार-बार उसी ओर अटक जाती थी। वो दोनो प्रत्येक शनिवार की रात नौ बजे सिनेमा का आखिरी शो देखने रिक्शे में जाते थे। प्रकाशो आधे घूँघट में होती थी। मैं नौ से पहले ही कुएँ की जगत पर जाकर बैठ जाती थी,और मन की मुराद पा ही लेती थी। मेरे मन की चाहत की भनक उसे हो गई थी,तभी तो क्या देखती हूँ एक दिन-मैं बाल्कनी पर खड़ी थी, उधर ही मुँह करके। वो हाथ के इशारे से मुझे बुला रही थी। मैंने अपने आसपास देखा, वहाँ और कोई नहीं था। समझ गई मैं कि यह इशारा मेरे लिए था। मेरी तो बाँझें खिल गईं। मैं निकल पड़ी अपनी मंज़िल की ओर.....

उसके घर के बाहर पहुँच कर मैंने बंद दरवाजे पर धीमे से दस्तक दी। जब तक दरवाजा खुलता ,मुझे लगामैं अलीबाबा की गुफा के द्वार पर खड़ी हूँ। दरवाजे के खुलते ही जैसे अलीबाबा की आँखें हीरे- जवाहरात देखकर फटी की फटी रह गईं थीं,ऐसा ही कुछ हाल मेरा भी होने वाला है।"खुल जा सिम-सिम,खुल जा सिम

-सिम'' के बोल मेरे दिमाग में झनझना रहे थे।दरवाजा खुलने में देर होने पर मैंने कुंडी जोर से खटकाई,तो भीतर से किसी ने थोड़े से पाट खोले और मेरी कलाई पकड़कर मुझे भीतर खींच लिया व दरवाजे को फिर उड़का दिया।

गोरी-गोरी कलाइयों पर हरे काँच की ढेरों चूड़ियाँ ,बदन पर हरी छींट की कमीज ,सफेद सलवार और लेस लगी सफेद चुन्नी सिर पर ओढ़े हुए -माथे पर बड़ी सी सिंदूर की बिंदी---कुल मिलाकर वो फिल्मों की हीरोई न मीनाकुमारी जैसी सौन्दर्य की प्रतिमा लगी।माथे पर गिरती लेस चेहरे का नूर बाखूबी बढ़ा रही थी।बहुत सलीके से मुझे कुर्सी पर अपने सामने बैठाकर वो पूछने लगी-''बेबी बुलाते हैं न तुमको?
मैंने उसकी आँखों में देखते हुए ''हाँ'' में सिर हिला दिया।
''यह ड्रेस फूलोंवाली बहुत सुन्दर है ,किसने बनाई झालर लगाकर?''
''दिल्ली से हम तीनों बहनों की बनकर आई हैं''-मैंने धीरे से जवाब दिया।
''आओ मैं तुम्हारी चोटियां गूँथ दूँ?-मेरे खुले बालों को देखकर वो बोली।
“आज नहीं ,फिर कभी”--मैंने जवाब दिया।
इसी तरह प्यारी-प्यारी ,मीठी -मीठी बातों में लगे हम दोनो में दोस्ती हो गई।एक - दूसरे का साथ दोनो को ही भला लगा।उसने मुझे खाने को बिस्कुट दिए व मुझसे दोबारा आने का पक्का वादा लिया।खुशी के मारे मेरे पाँव ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे।मैं उड़ती हुई अपने घर पहुँची और कमरे में आईने के सामने खड़े हो कर यूँ अपने को देखा मानो कोई मोर्चा जीत कर लौटी हूँ।

धीरे-धीरे प्रकाशो के घर जाने का मुझे नशा सा हो गया था।मुझे जब भी मौका मिलता,मैं उसका सुन्दर रूप निहारने व उससे बतियाने अधिकार - पूर्वक उसके घर चली जाती थी। छोटी बहन को मैंने शान से यह राज़ बताया तो उसने माँ को चुगली लगा दी।माँ ने करारी डाँट लगा दी , “तुम बच्चों के साथ खेलो, उस ब्याही औरत के घर जाने का तुम्हारा कोई काम नहीं क्या मालूम वो क्या सिखा दे,खबरदार जो वहाँ गई!”अब माँ को कैसे बताऊं कि वो कितनी भली व फिल्मों की हीरोईन जैसी है।अब तो मैं छिप-छिप कर जाने के मौके ढूंढती, जिससे मेरी बहन न देख ले।एक दिन मैं ज्योंही पहुँची, तो देखती हूँ कि वो रोए जा रही है।मैं कश्मकश में थी कि उसे कैसे दिलासा दूं, तभी मेरे चेहरे के भावों को पढ़कर वो बोली कि तुम चिंतित न होवो मुझे अपने पीहर की याद सता रही है, तभी रो रही थी।उसने बताया, “सन् **1947** की बात है।विभाजन के समय मैं तो अपने पति के पास हिन्दुस्तान में थी।उस समय इंसान दरिंदा बना हुआ था।औरतों को रावलपिंडी से निकालना मुमकिन नहीं था। माँ, बहन व भाभियों की इज्ज़त न लुट जाए,इसलिए पिता जी ने सारे परिवार को घर में बंद करके , बाहर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी थी।वही सब याद करके रो रही थी।”यह सुनकर मेरा दिल भी दहल उठा था।मैं छोटी थी,पर उसका दर्द समझती थी।तभी वो अपने दिल के दुखड़े मुझसे साँझा करती थी।हम दोनों सहेलियाँ बन गईं थीं,उम्र से बेखबर.....

परीक्षा के दिन करीब थे,हमें माँ पढ़ाती थी,इससे उधर विशेष जाना नहीं हो पाता था।तत्पश्चात् ग्रीष्मकालीन छुट्टियाँ थीं।हम दो माह के लिए दिल्ली जा रहे थे , अपने ननिहाल।माँ से बताकर मैं सब सहेलियों से विदा लेने चली।सर्वप्रथम प्रकाशो के घर पहुँची।वहाँ भीतर जाते ही देखती हूँ कि फुल्ली की सीला दिदिया आसन जमाए बैठी है।उसे वहाँ देखकर मुझे कुछ अटपटा सा लगा।प्रकाशो के सम्मुख वो फूहड़ जान पड़ती थी।खैर, मैंने प्रकाशो को दिल्ली जाने का बताया तो उसने प्यार से मुझे गले लगाया और कहा, “सदा खुश रहो”।मैं जाने के जोश में चिड़िया की भांति फुदकती वहाँ से भागी।जब तक मैं सबसे मिलकर वापिस लौटी तो क्या देखती हूँ---प्रकाशो के घर के पाट खोलकर एक जवान लड़का बाहर निकला और गली के अंधेरे में गुम

हो गया। अगले ही पल सीला दिदिया भी झट से बाहर निकली और साथ वाले आहाते में घुस गई। मैं वहीं कुछ कबाड़ व बोरियों के पीछे से आ रही थी, जिससे वे दोनों ही मुझे देख नहीं पाए थे। मैं शिशोपंज में डूबी अपनी सीढ़ियाँ चढ़ गई। घर पहुँचते ही ध्यान बंट गया,व अगली सुबह हम दिल्ली के लिए रवाना हो गए थे।

दो महीने मौज-मस्ती करके जब हम वापिस घर पहुँचे,तो मैं प्रकाशो से मिलने को उतावली हो उठी। मौका ढूंढने लगी। दोपहर को जब सब सो गए तो मैं उसके दरवाजे पर एक सुन्दर सी टोकरी उपहार देने पहुँची। दस्तक दी ,आशा के विपरीत दरवाजा नहीं खुला। कुंडी खटकाई,धीरे से द्वार के आधे पाट खुले और मैं अधिकार-पूर्वक भीतर पहुँच गई। अति उत्साहित जैसे ही मैंने बोलने को मुँह खोला कि मेरी दृष्टि वहीं ठहर गई ।हतप्रभ सी , मेरा मुँह खुला का खुला रह गया। प्रकाशो का मुँह सूजा हुआ था। आँखें बाहर निकली हुई थीं। नाक व गालों पर खरोंचों के निशान थे। सौंदर्य की प्रतिमा खंडित जान पड़ती थी। मेरा मन हाहाकार कर उठा--रूलाई रोके नहीं रूक रही थी। प्रकाशो को पहचानना कठिन जान पड़ता था। मेरे कुछ कहने से पूर्व ही उसने रोते हुए ,जोर की हिचकियाँ लेते हुए भींचकर मुझे अपने सीने से लिपटा लिया। बोली, "कहाँ चली गई थी तूं बेबी? मैं तो बरबाद हो गई। मेरी सारी तपस्या मिट्टी में मिल गई। मैं भरी दुनिया में अकेली हो गई।"

प्रकाशो का अपार स्नेह,अपनत्व व अनुराग पाकर मैं अविभूत हो उठी। मुझे लगा कि वास्तव में उसे छोड़कर जाना मेरी भूल थी। उसके कोई औलाद नहीं थी,न ही कोई भाई-बहन,शायद वो ऐसे ही किसी प्यार से मुझे बाँधती थी। अहम् था कि वो मुझे अपना मानती थी। अपना दुख-दर्द
मुझ से बाँटती थी। जो भी रिश्ता वो मानती होगी,उस रिश्ते का कोई नाम नहीं था। वो दिल का सच्चा रिश्ता था। आज भी मैं उसे किसी नाम की सीमा में बाँधकर उसकी पवित्रता व गहराई को नाप नहीं पाऊँगी! इतना जानती हूँ।

उसके स्नेहालिंगन के पाश से बाहर निकलकर ,मैंने पलकें उठाकर उससे ढेरों सवाल पूछ डाले। अपने सिर की कसम दकर उसने मुझसे पक्का वादा लिया कि कभी भी किसी को यह बात पता न चले ., क्योंकि जो कुछ वो मुझे बताने जा रही थी वो किसी लड़की की इज्ज़त से संबंधित है। --मालूम हुआ,फुल्ली की सीला दिदिया का किसी लड़के से कुछ महीनों से इश्क चल रहा था। पहले वो और सीला प्रकाशो के घर चिट्ठी ले और दे जाते थे। प्रकाशो उन दोनों प्रेमियों की मदद करके अपने को पुण्य का अधिकारी मानती थी। धीरे-धीरे उन दोनों प्रेमियों ने अनुनय-विनय करके प्रकाशो के घर पर ही मिलने की आज्ञा ले ली थी। वो भीतर वाले कमरे में मिलते थे,और प्रकाशो के पति के घर लौटने के पूर्व ही चले जाते थे। भला प्रकाशो को इसमें क्या एतराज़ था, सो उनका इश्क परवान चढ़ता रहा। दोनो की गाड़ी पटरी पर दौड़ रही थी, कि अचानक एक दिन प्रकाशो के पति को पेट-दर्द उठा और वो फैक्टरी से छुट्टी लेकर साँझ होते ही घर लौट आया। सीला का प्रेमी अभी आकर बैठा ही था ,कि कुंडी खटकाने पर दरवाजा खुलते ही सीला के बदले प्रकाशो के पति भीतर आ गए। आते ही आव देखा न ताव, जूतों से मार-मार कर उस लड़के की उन्होंने इतनी बुरी गत बनाई कि वो किसी तरह जान बचाकर वहाँ से भागा। उन्हीं जूतों से प्रकाशो को बेतहाशा पीटा,साथ ही गालियों की बौछार बरसाई। **उसे उस बेवफाई की सज़ा दी, जो उसने नहीं की थी।**

बाहर सारा मोहल्ला इकट्ठा हो गया था। तरह-तरह की बातें हुईं,उन सब में सीला भी थी। लेकिन वो क्या कहती? जितने मुँह उतनी बातें,
किन्तु असलियत का पता न तब किसी को था न ही कभी बाद में हुआ।

उस दिन से जुल्म सहने का सिलसिला जो आरम्भ हुआ,तो अपनी चरम सीमा लाँघकर ही समाप्त हुआ। प्रकाशो ने जीवन के आनेवाले पल मर-मर कर जीये थे। उस दिन से प्रकाशो का पति शराब पीने लग

गया।काम से घर आकर वो पूरा पौव्वा शराब का पीता फिर नशे में उसे गालियाँ देता और मारने लग जाता था।खाने के बर्त्तन उस पर फेंक देता,जिससे उसके चेहरे पर कट गया था।प्रकाशो ने सारे जुल्म सहे, पर अपना मुँह नहीं खोला।अपना वादा निभाया,वो बता नहीं सकी कि वो निर्दोष है।उसका पति उसे बेहद चाहता था,उसकी बेवफ़ाई पर वो तड़प उठा था।अपनी बाल्कनी पर खड़े होकर सुनने से उसके बंद दरवाजे से सब आवाज़ें मुझे सुनाई देती थीं।मैं चैन से सो नहीं पाती थी ,आधी-आधी रात तक उसके ख्यालों में खोई रहती थी।न जाने फिर कब नींद की आगोश में जाकर मैं चैन पाती थी।एक दिन मैं उससे मिलने के मोह को रोक नहीं पाई,बहुत हिम्मत जुटाकर वहाँ जा पहुँची।

देखती क्या हूँ--प्रकाशो के माथे पर पट्टी बँधी है, चेहरे पर ज़ख्म हो गए हैं।सारा समय रोते रहने से आँखों के नीचे काले गड्ढे बन गए हैं।वो पहचान में नहीं आ रही थी।हाँ अलबत्ता, सिंदूर की बड़ी बिन्दी वहीं थी, अपनी लाली बिखेरती हुई।जैसे सारा मोर्चा उसीने सँभाल रखा हो।उसने गिला करते हुए पूछा- "बेबी! तुमने भी आना छोड़ दिया, क्यों?" मैं जवाब देने के बदले उससे लिपट के रो पड़ी।क्या कहती उससे कि मुझसे तुम्हारी दशा नहीं देखी जाती, तभी मैं तुमसे दूर तुम्हारे लिए तड़पती रहती हूँ।हम दोनों एक -दूसरे से लिपटी कुछ देर यूं ही रोती रहीं।अचानक उससे छूटकर मैं बाहर भागी ,सीधे जाकर अपनी माँ को कहा कि वो मेरे साथ चले और उसे देखे।मेरी माँ ने मेरी तड़प व चेहरे के भाव पढ़े तो वे उसी क्षण मेरे साथ हो लीं।माँ को देखते ही जैसे उसके सब्र का बाँध ही टूट गया।प्रकाशो उनसे लिपटकर बिलख उठी।उनकी गोद में सिर रखकर वो जी भरकर रोई ,मानो बरसों की तड़प चैन पा रही हो।माँ और मैं भी उसके दुख के साझीदार बन गए थे, अविरल अश्रुधाराएँ बहाते हुए।माँ ने उसे प्यार किया व दिलासा दी।मुझे अपनी माँ पर गर्व हुआ,एक दुखी आत्मा का दर्द बाँटा था उन्होने।मेरी साथी पर स्नेह उड़ेला था।

अगली सुबह इतवार था।हमारा सारा परिवार इतवार को आर्य-समाज हवन करने जाता था।हम सब ग्यारह -बारह बजे जब हवन करके घर वापिस आए तो प्रकाशो के घर के बाहर भीड़ व शोर -शराबा सुनकर हम सब भी वहीं चले गए।प्रकाशो का पति जोर-जोर से चीख रहा था।वो भीतर से बंद दरवाजे को खोलने का प्रयत्न कर रहा था।पुराने जमाने का मोटा दरवाजा व लोहे की मोटी साँकल-- न वो खुल रहा था, न ही टूट रहा था।तभी बैंकवाले भैया अपने घर से एक मोटा बाँस उठा लाए।तीन-चार लोगों ने अपना पूरा जोर लगाकर बाँस को खिड़की पर जोर से मारा।जोर लगने से दोनो पाट भीतर की ओर खुले।वहाँ से जो नज़ारा दिखा वो आज भी मेरे मनो- मस्तिष्क पर वैसा ही अंकित है।खिड़की में लगी लोहे
की सीखों के बीच से--- पंखे से बँधी सफेद चुन्नी , जिसके दूसरे सिरे से प्रकाशो की बँधी गर्दन ,बाईं ओर लटका हुआ सिर व आँखें बाहर को निकली हुई दिख रही थीं।यह दृश्य देखते ही मैं पूरा जोर लगाकर चीखी और वहीं गिरकर बेहोश हो गई। पिताजी उठाकर मुझे घर ले आए। दो दिनों तक
मैं बुखार से तपती रही व बेहोशी में बड़बड़ाती रही।प्रकाशो की आकस्मिक और अस्वभाविक मृत्यु का सदमा मुझे गहरा असर कर गया था।अपने गर्भ में राज़ छिपाए चली गई थी **--आत्म -गर्भिता!**

उसका पति उसे बेहद चाहता था,रो-रोकर उसने अपने बाल नोच डाले थे।वो टूट गया था।उसके टूटने का कारण था,पत्नि की बेवफ़ाई--जो एक भ्रम मात्र था।तभी तो सीला दिदिया को देखते ही मुझे उसका मुँह नोचने का मन करता था।अब मैं कभी भी फुल्ली के घर खाने नहीं जाती थी।प्रकाशो के घर ताला लग गया था। एक दिन स्कूल से लौटने पर माँ ने बताया कि प्रकाशो का पति अपने बड़े भाई- भाभी व बच्चों को लेकर लौट आया है।जीत की बिब्बी ही तो उसकी भाभी थी।और प्रकाशो का पति था-सब बच्चों का **'प्रेम चाचा'!**

उस घर का दरवाजा सारा दिन खुला रहता था ।वहाँ ऐसा अब कुछ भी नहीं था जो ध्यान आकर्षित करे।वक्त अपनी तेज रफ्तार से दौड़ रहा था।खड़ग्सिंग की चार बेटियाँ हो गई थीं।सुना कि सीला दिदिया की शादी की बात भी कहीं चल रही थी।मैं अब दसवीं कक्षा में थी।एक रात करीब नौ बजे बाहर शोर सुनकर हम सब बाल्कनी में निकल आए।खड़ग्सिंग की बेटियाँ थाली पर कड़छुली मार-मार कर शोर मचा रहीं थीं,व घूम-घूमकर नाच रहीं थीं।मालूम हुआ खड़ग्सिंग के बेटा हुआ है।मोहल्ले के सभी लोग जाकर उन्हें बधाई देने लगे।पलक झपकते ही बाल - मंडली भी वहाँ एकत्र हो गई।तय हुआ कि बड़े लोगों को मुँह मीठा करने दो , हम लोग आँख -मिचौली खेलते हैं।प्रेम- चाचा अपनी सीढ़ी के कोने में गुमसुम बैठा ख्यालों में गुम था।प्रकाशो की मृत्यु के बाद उसे किसी ने हँसते-बोलते नहीं देखा था।जब भी उसे देखती मुझे लगता, मैं हूँ न उसके ग़म की साथी!फिर भी उस चुप्पी का दंश मुझे भीतर तक चुभ जाता।

उधर सारी बाल-मंडली छिपने के लिए मोहल्ले में फैल गई ।वन्त कौर आँखें मीचकर वहीं कोयले की बोरियों के ढेर पर बीस तक जोर -जोर से गिन रही थी।जब तक वो ढूंढने जाती , मैं भागी-भागी राठीजी के घर के बगल की सीढ़ियों से ऊपर चढ़ती चली गई।अँधेरे में हाथ को हाथ
नहीं सूझ रहा था।वहाँ खुसपुस की आवाजें आ रही थीं।चन्द्र की कुछ अनछुई किरणें उस घोर तम अँधेरे को चीरकर शायद स्वंय ही मैली होने आई थीं।तभी तो उनके मद्धम प्रकाश में मैंने कलुषित सीला दिदिया और दुबे आंटी के बेटे कमल को निर्वस्त्र एक -दूसरे के आलिंगन -पाश में बँधे रति -क्रीणा में मग्न देखा।यह देखते ही मैं उल्टे पाँव गिरते -पड़ते नीचे की ओर भागी।चुपचाप जाकर बाल-मंडली में मिल गई।मेरी छोटी बहन पकड़ी गई थी,अब उसकी पारी थी।

सीला दिदिया का इतना घिनौना रूप देखकर मुझे उल्टी आ रही थी।खेल बीच में ही छोड़कर मैं घर को भागी।प्रकाशो का त्याग मुझे निरर्थक लगा।कितनी गहन ,गंभीर और आत्मसम्मान से परिपूर्ण थी प्रकाशो।इस निर्लज्ज की लाज को बचाने के लिए उसने प्रेम चाचा के प्यार व अपनी जान की बलि दे दी थी।उजड़ गया था प्रेम चाचा का नीड़।जिस भाभी को वो अपना घर बसाने को लाया था, वो उसे रोटी खिलाकर राजी नहीं थी।वो कई बार उसे गालियाँ देकर घर से बाहर निकाल देती थी।उसी के घर का दरवाजा उसी के लिए बंद कर देती थी।

एक दिन प्रेम चाचा को मिरगी का दौरा पड़ा, झाड़ने -फूँकने वाले को बुलाया गया।उसने उल्टी कराई, जिसमें बालों का गुच्छा निकला।सारे मोहल्ले में कानाफूसी हुई कि हो न हो ये जीत की बिब्बी ने कोई काला जादू किया है। खैर,तब वो ठीक हो गया।अगले दिन वो फिर गली में गिरा हुआ था।जीत के बाबा ने जब उसे पकड़ कर उठाना चाहा ,तो वो वहीं निढाल सा पड़ा रहा।तभी सुना कि वो कहीं से जहरीली शराब पी आया था व अपने दर्द समेटे मृत्यु की गोद में चैन पा गया था।जीत की बिब्बी दहाड़े मार-मार कर उसकी लाश पर मगरमच्छ के आँसू रो रही थी,और विलाप कर रही थी ,"अरे-रे ! तूं चला गया न अपनी प्रकासो के पास।अपना घर हमारे हवाले कर गया, क्या इसीलिए लाया था हमें यहाँ?"उसके नकली रूदन को सब समझ रहे थे।लेकिन प्रेम के लिए सब दुखी थे।पर आज मुझे बहुत राहत महसूस हो रही थी।मेरी आँखों से चैन के आंसू बह निकले।शायद उस आत्मगर्भिता के लिए मेरी यही श्रद्धाजँलि थी।